IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मध्यकालीन संत समाज में सामाजिक समरसता

ओम प्रकाश

सहायक आचार्य इतिहास

खेमा बाबा महिला महाविद्यालय बायतुए जिला.बालोतरा (राजस्थान)

भूमिका :- **'तुलसी' संत सुंब तरु, फूलि फलहि पर हेत ।**

इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत ।।

राजस्थान की इस पावन धरा पर अगणित शासकों ने शासन किया। बाहरी आक्रमण भी हुए परंतु इस वीर और वीरांगनाओं की भूमि पर अधिकार नहीं जमा पाए क्योंकि कहीं ना कहीं इस भूमि में संत और भक्ति का एक ऐसा चमत्कारिक अंश विद्यमान है कि जो भी इस पर अधिकार करना चाहा कुछ ही समय में अधिकारहीन हो गया। इस धरा पर अनेक संतों ने जन्म लिया तथा अधिकतर ने अपने संप्रदाय भी चलाए। इन संप्रदाय में जसनाथी संप्रदाय, दादू संप्रदाय, विश्नोई संप्रदाय, लाल दासी संप्रदाय, चरण दासी, रामानंद संप्रदाय, राम स्नेही,(रैण शाखा) दरिया पंथ, निरंजन संप्रदाय, रसिक संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, अलकिया संप्रदाय, परनामी संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, वैराग संप्रदाय, कानपा पंथ कुंडा पंथ, उंदरिया पंथ, कंचलिया पंथ, नवल संप्रदाय, गुर्जर संप्रदाय, तेरापंथ संप्रदाय, निष्कलंक संप्रदाय, आदि ऐसे संप्रदाय राजस्थान में प्रसिद्ध है, उनके प्रवर्तक संत सगुण भक्ति धारा एवं निर्गुण भक्ति धारा दोनों को मानने वाले थे। उनके समकालीन ही सूफीवाद को मानने वाले मुस्लिम संत भी हुए। जिनमें ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, शेख हमीदुद्दीन नागौरी, पीर फखरुद्दीन आदि प्रमुख है। मध्यकालीन भारत में संत संप्रदाय एवं समाज ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, इस काल में संतों ने समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने हेतु भरसक प्रयास किया।

शब्द कुंजी :- मध्यकालीन, संत समाज, भक्ति, संप्रदाय, आन्दोलन, साहित्यए जन जागरण, धर्म।

संत समाज का उद्देश्य :- इस शोध आलेख का उद्देश्य मध्यकालीन संतों का सामजिक समरसता के योगदान का अध्ययन करना है। "संतो तथा सूफियों के प्रयासों से जो भक्ति एवं सूफी आंदोलन आरंभ हुए उनसे मध्य भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में एक नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ। प्रो रानाडे के अनुसार भक्ति आन्दोलन के परिणामों में प्रमुख है भक्ति के प्रति आस्था का विकास, लोक भाषाओं में साहित्य रचना का आरंभ, इस्लाम के साथ सहयोग के परिणाम स्वरुप सहिष्णुता की भावना का विकास, जिसकी वजह से जाति व्यवस्था के बंधनों में शिथिलता आई और विचार तथा कर्म

दोनों स्तरों पर समाज का उन्नयन हुआ।"[1] संतों व सूफियों के उपास्य व उपासक अलग-अलग हो सकते हैं परंतु लक्ष्य दोनों का ही एक था समाज उत्थान। भ्रमित लोगों को जागरूक करना व समाज में व्याप्त बुराइयों को खत्म करना आदि कार्य इन्होंने किया। "मध्यकाल में भक्ति आंदोलन का विकास दो चरणों में हुआ पहले चरण के अंतर्गत दक्षिणी भारत में भक्ति के आरंभिक प्रादुर्भाव से लेकर 13वीं शताब्दी तक के काल को रखा जा सकता है और दूसरे चरण में 13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक के काल को रख सकते हैं। उत्तरी भारत में यह आंदोलन इसी समय इस्लाम के संपर्क में आया और इसकी चुनौतियों को स्वीकार करता हुआ इससे प्रभावित उत्तेजित और आंदोलन हुआ।"[2] मध्यकाल में बाह्य आक्रमण भी अधिक हुए और कहा जाता है कि जब जनता पर कष्ट आता है तब वह भगवान को याद करती हुई किसी के सहारे की अपेक्षा करती है और यह सहारा था भक्ति का। इसलिए जनता में भक्ति ने अपना स्थान बना लिया। लोगों को भक्ति व भक्ति का आसरा लेने वाले संत भक्त भी अच्छे लगने लगे। मध्यकाल में संत भक्त भगवान के समान पूजे भी जाने लगे और उनके बताए हुए मार्ग पर जनता आगे बढ़ती चली गई।

उपकरण :- इस आलेख से सम्बंधित तथ्यों एवं सुचनाओं को एकत्रित करके पुस्तकों पत्रए पत्रिकाओंए लेखोए समाचार पत्रों, शोध प्रबंधों के माध्यम से द्वितीयक शोध सामग्री प्राप्त की गई|

संत समाज में भक्ति दर्शन:- वैष्णवों की सगुण भक्ति का साधारण जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। भारत में दर्शन सदैव ही धर्म के साथ-साथ चलता रहा है। धर्म की गूढता सामान्य लोगों की समझ से अक्सर बाहर रहती है। ऐसी स्थिति में रहस्य और भक्ति की भावना द्वारा इसका व्यावहारिक रूप सामने आता है और पनपता है। "वैष्णव संतो के प्रयत्नों से भगवत गीता का महत्व प्रतिष्ठा अवतार वाद की स्थापना के साथ अवतारों की पूजा और ब्राह्मणों की उच्चता आदि को स्थान प्राप्त हुआ। वल्लभाचार्य ने भगवान की प्रतिमा पूजा पर बल दिया। रामानुज ने भक्ति आंदोलन के इस धारणा को आगे बढाने का काम किया और उच्च जातियों के अधिकारों को कायम रखते हुए सीमित रूप में निम्न वर्गों की आशा को भी निराशा में नहीं बदलने दिया। कहा जाता है की भक्ति का आरंभ दक्षिण भारत से हुआ और उत्तर भारत में भक्ति लाने व फैलाने का श्रेय रामानंद को जाता है।"[3] कबीर दास ने लिखा है कि -

भक्ति द्रविड़े उपजी, लाये रामानन्द |

प्रकट करी कबीर ने, सात द्वीप नौ खंड ||

उत्तर भारत में रामानंद ने वैष्णव भक्ति का प्रचार प्रसार किया और अपनी शिष्य परंपरा भी आरंभ की इन शिष्यों में कबीर, रैदास, नरहरिदास,सेना, धन्ना, पीपा आदि कई संत रामानंद के शिष्य थे।

संतों का समाज पर प्रभाव :- संत समाज की कई विशेषताएं थी जिन्होंने उन्हें अन्य समाजों से अलग बनाया जैसे भक्ति आंदोलन, समाज सेवा, शिक्षा और साहित्य, सामाजिक न्याय आदि। संतों ने भक्ति आंदोलन के साथ-साथ समाज सेवा की। समाज सेवा के रूप में अनेक साहित्य रचना भी हुई जिसे लोगों ने अपने दिलो दिमाग में सहेज कर रखा। लोगों में इस साहित्य के द्वारा भक्ति भावना का विकास हुआ। भक्ति का अर्थ ही पूर्ण समर्पण है। "ऋग्वेद की ऋचाओं में इस प्रकार के पूर्ण समर्पण का उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण में कहा गया है की पूर्ण भक्ति भाव से भगवान की उपासना करने से मोक्ष प्राप्त होता है। एक सूत्र में कहा गया है कि ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। भगवत गीता में भक्ति का सर्वोत्कृष्ट रूप है, जब कृष्ण पूर्ण समर्पण का उपदेश देते हैं। ईशा के पूर्व ही भगवत धर्म का विकास

हो गया था। जिसका आधार भक्ति भाव है इसमें निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सगुण ईश्वर की स्थापना की गई। भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों की कल्पना की गई और प्रतिमाओं की भक्ति भाव से उपासना आरंभ हुई। अलबरूनी ने कृष्णोपासना का उल्लेख किया है। अतः मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का प्रेरणा स्रोत भारतीय दर्शन था।"[4] मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के संतों ने भारतीय दर्शन के सिद्धांतों को अपनाया और उन्हें अपने आंदोलन में शामिल किया। वेदांत दर्शन भक्ति योग, ज्ञान योग आदि भारतीय दर्शन के सिद्धांत हैं, जिन्हें संतों ने अपनाया और लोगों तक भी पहुंचा।

"समस्त उत्तर भारत तथा महाराष्ट्र में जो भक्ति आंदोलन 14वी तथा 15वीं शताब्दियों में फैला उसने संतों के नवीन वर्ग को जन्म दिया था। इस आंदोलन का आरंभ रामानंद ने किया था। लेकिन संतों ने जिन भावनाओं को व्यक्त किया था वह कबीर तथा नानक के रूप में अधिक शक्तिशाली ढंग से व्यक्त हुई। इन संतों ने निर्गुण ब्रह्म की आराधना पर जोर दिया और हिंदू मुस्लिम समाजों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास भी किया। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में रहस्यवादी धारणा को स्थापित किया और इससे मुस्लिम सूफियों के साथ भी सामंजस्य स्थापित किया। इन भक्तों में कबीर, नानक, दादू, रविदास प्रमुख थे। भक्तों का दूसरा वर्ग था जो सगुण उपासना का समर्थक था और जिसका मुख्य उद्देश्य निराश हिंदू समाज में आशा तथा विश्वास का संचार करना था। इस समूह में चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य, सूरदास, कुंभन दास, तुलसीदास रसखान, प्रमुख है ।"[5] इनके आलावा भी बहुत से ऐसे संत है जिन्होंने समाज को एक नई दिशा दिखाई तथा हताश निराश जनता के मन में भक्ति भावना को जागृत किया। परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार 'संत' शब्द का प्रयोग प्रयोग बुद्धिमान, पवित्र आत्मा, सज्जन, परोपकारी व सदाचारी व्यक्ति के लिए किया मिलता है। कभी-कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त, साधु एवं महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय समझ लिया जाता है। किंतु कुछ लोग इसे 'शांत' शब्द का रूपांतरण होना ठहराते हैं और कहते हैं कि उस विचार से इसका अभिप्राय "**शम सुखम ब्रह्मानंदात्मकम विद्यते अस्य**" के अनुसार ब्रह्मानंद संपन्न व्यक्ति होना चाहिए। बौद्धों के पाली भाषा में लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ 'धम्मपदम' में भी यह शब्द कई स्थलों पर शांत के अर्थ में ही प्रयुक्त दिख पड़ता है। इसी प्रकार कुछ विद्वान 'संत' शब्द को सनौती प्रार्थितं फलं प्रयच्छति के आधार पर बने हुए सन्ति व संत्य का विकृत रूप समझते हैं और इसका अर्थ फल दाताओं में श्रेष्ठ बतलाते हैं।"[6] इससे यह तो सिद्ध होता है कि संत समाज ने लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान और आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाने का भरसक प्रयास किया तथा जनता को सत्य, अहिंसा और करुणा का पाठ पढ़ाया।

मध्यकाल में संतों ने जिस मत का प्रचार किया और जिसे उन्होंने विश्व कल्याण के लिए अत्यंत आवश्यक समझा वह कोई नितांत नवीन संदेश न था और न ही भारतीयों के लिए उसका कोई अंश अपरिचित ही था। उसके प्राय: प्रत्येक अंग का मूल रूप हमारे प्राचीन साहित्य के किसी न किसी भाग में विद्यमान अवश्य है और हमारे कई महान पुरुषों ने उनके आधार पर लगभग इन संतों के ही समान अपने सुझाव रखने के प्रयास किए। वह महान पुरुष गृहस्थ होकर भी मन मस्तिष्क से संत पुरुष ही थे। "बीच में कुछ ऐसे व्यक्ति भी अवश्य हुए जिन्होंने समय पर प्रतिगामिता की धारा को किसी प्रकार मोड़ने का साहस किया किंतु उनके किए भी अधिक परिवर्तन ना हो सका। अंत में कबीर साहब के समय से ऐसे महापुरुषों की एक परंपरा चल निकली। जिसने इतने दिनों तक इस स्थिति की चौकसी की है। प्रारंभिक काल के संत आध्यात्मिक बातों को अधिक महत्व देते थे जिस कारण उन्हें सुधारने के यत्न भी

केवल धार्मिक दृष्टिकोण से किए जाते थे। किंतु ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया है उक्त धार्मिक वातावरण में परिवर्तन व संशोधन भी होते गए हैं और तदनुसार अनेक नवीन समस्याएं खड़ी होती गई है। आधुनिक संतो को इसी कारण अपने कार्यक्रम में कतिपय ऐसी बातों का भी समावेश करना पड़ा है जो कदाचित पहले संतों के अनुभव की न थी।"[7] फिर भी संतमत के मौलिक सिद्धांतों में किसी प्रकार का हेर फेर नहीं आया है और वे ज्यों के त्यों अटल एवं अविछिन्न है। जैसा तप और त्याग पहले के संतों में था, वही आज के संतों में भी है और जिम यह नहीं है वह संत कहलाने के लायक भी नहीं है क्योंकि संत तो वह है जो जप तप के साथ दूसरों का भी भला करें और खुद तरे तथा दूसरों को भी तारे।

मध्यकाल को भक्ति साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है परंतु देश में मुगलों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे देव मूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था तथा जनता मूकदृष्टा बनकर देखते रहती थी। ऐसी दशा में वह अपनी वीरता के गीत ना तो गा ही सकते थे और ना बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलट फेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं था। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि सामान्य जनता की धर्म भावना कितनी दबती जा रही थी। उसका हृदय धर्म से कितना दूर हटा चला जा रहा था। कहा जाता है कि धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के ही सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण जीवंत दशा में रहता है किसी एक के भी अभाव में वह अधूरा रहता है। कर्म के बिना धर्म लूला लंगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना हृदय विहीन अर्थात निष्प्राण रहता है। ज्ञान के अधिकारी तो कुछ ही विशिष्ट और विकसित बुद्धि वाले लोग होते हैं। कर्म और भक्ति ही सारे जन समुदाय की संपत्ति होती है। धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल से और पुराण काल से हुआ था वह मध्यकाल में कहीं दबती उभरती या की कछुआ चाल से चली आ रही थी। ऐसे समय में इस टूटे व बिखरे जन समुदाय में आध्यात्मिक ऊर्जा का संरक्षण इस संत समुदाय द्वारा ही किया गया था।

भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था उसकी ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी। गुजरात में स्वामी मध्वाचार्य जी ने अपना द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय चलाया जिसकी और बहुत से लोग झुके। देश के पूर्वी भाग में जयदेव जी के कृष्ण प्रेम संगीत की गूंज चली आ रही थी। उत्तर या मध्य भारत में एक और तो ईशा की 15वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य के शिष्य परंपरा में स्वामी रामानंद जी हुए जिन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर जोर दिया और एक बड़ा भारी संप्रदाय खड़ा किया। दूसरी ओर वल्लभाचार्य जी ने प्रेम मूर्ति कृष्ण को लेकर जनता को रसमग्न किया। जिसकी एक पीठ नाथद्वारा में भी है जो श्रीनाथजी की पूजा अर्चना करती है। इस प्रकार रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की परंपराएं चली।

सगुण व निर्गुण धाराओं के संतों ने इस देश के गौरव को बहुत गौरवान्वित किया। निर्गुण धारा वाले सभी संतो में कबीर का स्थान सर्वोत्तम है। कबीर के लिए कहा गया है कि कबीर अद्भुत है अनूठे है। उनमें भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों विद्यमान है। "वे मात्र भक्त ही नहीं थे अपितु समाज सुधारक भी थे। मध्यकालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों का डटकर विरोध किया। अंधविश्वासों, दकियानुशी, अमानवीय मान्यताओं तथा गली सड़ी रुढियों की कटु आलोचना की। उन्होंने समाज धर्म तथा दर्शन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विचारधारा को प्रोत्साहित भी किया। कबीर ने बौद्धों, सिद्धों, नाथों की साधना पद्धति तथा सुधार परंपरा के साथ वैष्णव संप्रदायों की भक्ति भावना को ग्रहण किया। कबीर ने तो हिंदू व मुस्लिम रीति रिवाज में जो ढोंग या पाखंड चल रहा था, उसे भी खत्म करने का प्रयत्न किया। कबीर ने अपना ग्रंथ बीजक में लिखा है कि सिकंदर शाह लोदी ने कबीर की महिमा को सुनकर उनसे न्याय, व्याकरण आदि विभिन्न शास्त्रों पर अपना मत लिखने हेतु लगभग हजार गाड़ियों में कागज भरकर भेजें तो कबीर ने कागज के एक स्थान पर 'राम' शब्द लिखकर वापस गाड़ियां भिजवा दी और कहा कि संपूर्ण न्याय, व्याकरण, ज्ञान-विज्ञान इसी एक 'राम' नाम के तत्व में है।"[9] इन्हीं के समान जसनाथी संप्रदाय के प्रवर्तक जसनाथ जी भी थे। "जसनाथ जी ने अपने सदप्रयत्न से वेद शास्त्र की मर्यादा और सनातन धर्म की प्रतिष्ठा की। मध्यकालीन संतों की भांति उन्होंने स्वसिद्धांतों के आधार पर शास्त्र सम्मत सिद्धांतों को ही स्वीकार किया। मध्यकालीन संत साहित्य में संत जसनाथ में योग साधना, भक्ति, आध्यात्मिक दार्शनिक दृष्टिकोण, सदाचार, कर्मवाद, जीव दया, आत्म चिंतन, अहिंसा के उपदेश, ईश्वर की व्यापकता तथा माया का ब्रह्म के साथ संबंध आदि पर बल दिया है।"[10] जसनाथ जी दिल्ली के लोदी वंश के समकालीन थे।

निष्कर्ष :- जसनाथ जी के ही समान भारत में कई ऐसे संत समाज हुए है जिन्होंने देश में व्याप्त कुप्रथाओं, अत्याचारों और संकटकालीन परिस्थितियों में जनता का सहारा बन देश में भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मध्यकाल में संत समाज का आविर्भाव नहीं होता तो इस देश कि दशा और दिशा कुछ ओर ही होती। इस युग में संतों ने अपनी दिव्य और अमरवाणी से सहज धार्मिक स्थिति को प्रतिष्ठित कर मानवों में मानवता की सुरभि भर दी। उन्होंने एक ऐसे मानव धर्म का उद्घाटन किया जो देशकाल, जाती, वर्ण,धर्म आदि किसी के घेरे में घिर नहीं सकता। मध्यकालीन संतों ने उसमे मानव जीवन के विकासशील तत्वों को ही धर्म में स्थान दिया और उन्हें तर्क और बुद्धि का आधार प्रदान कर उस पर खड़े आडम्बर और अंधविश्वास के आवरण को भस्म कर दिया। इसलिए कहा जा सकता है कि मध्यकालीन समाज में सामाजिक समरसता फेलाने में संत समाज का अमूल्य योगदान था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1ण हरिश्चंद्र वर्मा : मध्यकालीन भारत; मानव विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, 2007,पृ. 435

2ण वही पृ. 435

3ण हरिश्चंद्र वर्मा : मध्यकालीन भारत; मानव विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, 2007,पृ. 436

4ण वी.डी.महाजन : मध्यकालीन भारत; एस चंद एंड कंपनी लि., नई दिल्ली,2007, पृ. 231

5ण वही पृ. 232

6ण परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परम्परा; लीडर प्रेस, इलाहाबाद,1972, पृ.4

7ण वही पृ. 11

8ण हरिश्चंद्र वर्मा : मध्यकालीन भारत; मानव विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, 2007,पृ. 438

9ण बलदेव वंशी: सात भारतीय संत; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली,

2010,पृ. 33

10ण दिनेश चन्द्र शुक्ल व ओंकार नारायण सिंह: राजस्थान की भक्ति परम्परा एवं संस्कृति, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पृ. 29